नक्सलबाड़ी के 50 साल : विरासत और चुनौतियाँ

प्रो. रवींद्र गोयल

(एक स्पष्टीकरण- लेखक आन्दोलन का लम्बे समय से हमदर्द है। कई साथी इस सोच से सहमत नहीं हो सकते हैं। यह लिखने का मात्र इतना ही उद्देश्य है की इस सवाल पर लेख को एक राय के तौर पर रखा जाए जिस पर अगर और साथी प्रतिक्रिया करना चाहें तो करें।)

जब भी ये लाल अल्फाज गाये जाते हैं

कुछ चेहरे काले हो जाते हैं
हम बच्चे तुमसे तो अच्छे है
आबोहावा के गुल लाल से गुलजार
बालाओ के माथे की बिन्दिया लालामलाल

ये लाल रंग है मेहनती गरीब का
ये लाल रंग है आमो-आवाम का

(सुब्बाराव पाणिग्रही की कविता का अनुवाद मोहम्मद उमर फारूक द्वारा)

पचास साल पहले, 1967 में, बंगाल के सुदूर इलाके में एक चिंगारी जली थी। सी.पी.एम. की दार्जीलिंग जिला कमेटी ने वहां के नक्सल्बाड़ी के इलाके में एक किसान उभार को संगठित किया यह उभार जोतेदारों की फसल को जब्त करने, बुरे शरीफजादो को सजा देने तथा बटाईदारों को फसल का दो तिहाई देने की मुख्य मांगों के सवाल पर संगठित किया गया था। इस किसान उभर को व्यापक किसान आबादी का समर्थन प्राप्त था। यह वह समय था जब पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चा की सरकार थी और सी.पी.एम.विधान सभा में सबसे बड़ी पार्टी थी। सी.पी.एम. के नेताओं ने आन्दोलन के समर्थन के बजाये आंदोलन के व्यापक दमन का रास्ता अपनाया। लेकिन नक्सलबाड़ी आन्दोलन ने देश भर में नयी क्रन्तिकारी उर्जा का संचार किया। देश के कोने कोने में किसान और अन्य आन्दोलनों की बाढ़ सी आ गयी। देश और विदेश में पढ़े लिखे नौजवान आन्दोलन के समर्थन में आये। 'आमारबाड़ी, तोमार बाड़ी, कानूरबाड़ी नक्सलबाड़ी' उस समय का एक लोकप्रिय नारा था।

फैक साहब के शब्दों में वो एक ऐसी फिजा थी जिसमें

यूँ लगता था
दो हाथ लगे और
नाव पूरमपार लगी
पर ऐसा न हुआ
हर धारे में मझधारें थी
कुछ माझी थे अनजान बहुत
कुछ बे परखी पतवारें थी

लेकिन यह भी सच है कि भारतीय शासक इस नए क्रांन्तिकारी आन्दोलन से भयाक्रांत हो गया था। और उसने इस आन्दोलन से उपजी चुनौतियों से निपटने के लिए तीन तरह की नीतियां अख्तियार की। एक तो आन्दोलन के व्यापक दमन का रास्ता था। दूसरे उसने आन्दोलन को बदनाम करने का व्यापक अभियान चलाया। इस अभियान में सभी शासक वर्गीय पार्टियाँ या फर्जी प्रगतिशील पार्टियाँ एक हो गयी। लेकिन तीसरे यह भी सच है कि आन्दोलन ने देश की संवेदना को किसानों की बहु संख्यक आबादी की समस्याओं के प्रति सचेत किया और सरकार को उन समस्याओं के हल के लिए एक हद तक बाध्य किया।

कई किसान आदिवासी समर्थक कानूनों को पारित करने के लिए दबाव बनाया। भूमि अधिग्रहण के मंसूबों पर हालिया विराम इस आन्दोलन से प्रेरित जल जंगल और जमीन की किसान/आदिवासियों की देशव्यापी लड़ाई का ही नतीजा है। बंगाल और छत्तीसगढ़ के संघर्ष इसके ताजा उद्हारण है। यह सही है कि इन बदमो को व्यव्हार में कम ही लागू किया जाता है(उदाहरण के लिए, स्थानीय राजनेताओं और व्यापारियों, सड़क ठेकेदारों और भवन-माफिया के द्वारा सरकारी पैसे का गबन करना, कानून के तहत मजदूरों को नियमित मजदूरी से इनकार करना)। इन सुधारों के उल्लंघन के बावजूद, इन कदमों के नतीजे के तौर पर कम से कम गरीबों को कुछ कानूनी अधिकार तो मिले हैं। जनपक्षधर राजनितिक या मानवाधिकार कार्यकर्ता न्यायपालिका या आन्दोलन के द्वारा गरीबों को कानून द्वारा दिए गए अधिकारों को लागू करने के लिए सरकार या प्रशासन पर दबाव डाल सकते हैं।

आज पचास साल बाद नक्सलबाड़ी आन्दोलन की विरासत का जब जायजा लेते हैं तो दो बातें साफ दिखाई देती हैं। एक तो राज्य द्वारा निर्मम दमन के बावजूद आन्दोलन को खत्म नहीं किया जा सका है। आज भी शासकों को सबसे बड़ा खतरा आन्दोलन के समर्थकों से ही दीखता है। मनमोहन सिंह हों या मोदी उन्हें आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा इन से ही दीखता है। सच कहें तो शासकों को नक्सलवादियों की बन्दूक की चिंता उतनी नहीं है जितनी उस असंतोष की है जिसको वो आवाज दे रहे हैं।

लेकिन दूसरी बात भी उतनी ही सच है कि आज जो स्वप्न, जो उद्देश्य 67 में उन क्रांति द्रष्टाओं ने अपने समक्ष रखा था वो अभी कामयाबी से बहुत दूर है। अकूत कुर्बानियों के बावजूद उस आंदोलन से जुड़े या उससे हमदर्दी रखने वाले व्यक्ति केवल असफल ही नहीं आज भी राजनितिक परिदृश्य पर एक हाशिये की ताकत ही हैं। वो लोग कई भिन्न भिन्न छोटे बड़े संगठनों/ समूहों में बंटे हैं। या आन्दोलन के कई हमदर्द अकेले अकेले जीवन बिता रहे हैं। उनमे कई सवालों को ले कर मतभेद हैं। विचारधारा और पीछे हुए समाजवाद के तजरबे और अपने देश में हुए संघर्षों का कैसे सार संकलन किया जाए, आज के समय में क्रांति के दोस्त और दुश्मनों की क्या पहचान बनती है, अपने कामों में जनवाद, महिला अधिकार या जाति के सवालों को कैसे पिरोया जाये और रोजबरोज के कामों को कहाँ से शुरू किया जाये। कुछ 'शुरुआत से शुरू करने के पक्षधर हैं तो कई साथी इस ख्याल में हैं कि क्रांति के लिए हथियार बंद संघर्ष समय की जरूरत है। इसके बीच भी कई अवास्थितियाँ मौजूद हैं। लेकिन वो हारे और अपराजित नहीं हैं। अपनी समझ के हिसाब से जूझ रहे हैं। धर्मवीर भारती

याद आते हैं
इसलिए तलवार टूटी अश्व घायल
कोहरे डूबी दिशाएं

कौन दुश्मन, कौन अपने लोग, सब कुछ धुंध धूमिल
किन्तु कायम युद्ध का संकल्प है अपना अभी भी
क्योंकि सपना है अभी भी!

ऐसे में यह सवाल उठता है कि भविष्य का रास्ता क्या हो? कुछ साथी खेमे के भीतर टूट बिखराव से स्वाभाविक तौर पर चिंतित हैं और इसको खत्म कर एका बनाने की मुहिम में खुद ही टूट बिखर रहे हैं। बड़ी बड़ी बातें करते हैं, निष्क्रिय उग्र परिवर्तनवाद के वाहक बने हुए हैं।

कुछ तो शुरुआत से शुरू करने के पैरोकार हो गए हैं। ये साथी अपनी लाख सदिच्छाओं और अपने वज्र संकल्प के बावजूद कुछ अर्थपूर्ण कर पाने में असमर्थ हैं। इसके विपरीत कई साथी हैं जो सब टूट फूट से बगैर चिंतित हुए अपनी ही धुन में लगे हुए हैं। इनमें कुछ का प्रभाव कम है तो कुछ का ज्यादा है। लेकिन ये भी। अपनी अकूत कुर्बानियों के बावजूद देश के पैमाने पर सामाजिक मुख्यधारा नहीं केवल हाशिये की ताकत ही हैं। और इनके कार्य मुख्यत: रक्षात्मक ही बने रहते हैं। पहल शाषक वर्ग के हाथ में ही रहती है। ये कोई प्रभावी विकल्प नहीं बन पाते।

आज यदि सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन को आगे बढ़ना है तो एक न्यूनतम आधार के तौर पर ऐसी ताकतों को इक्कट्ठा होना होगा जो आज वर्तमान शोषक व्यवस्था से दो चार हो रहे हैं। लेकिन तजरबा गवाह है कि ये एकजुटता तब तक नहीं होगी जब तक आपस में मौजूद मतभेदों को नहीं स्वीकार किया जाये और मतभेदों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता के अधिकार को नहीं स्वीकार किया जाये। तमाम मतभेदों के बावजूद संयुक्त कामों के बिंदु तलाशे जाएँ। मतभेदों के बावजूद एकता और उस पर आधारित कार्यशैली समय की मांग है। मार्क्सवादी शब्दावली में कहें तो एकता और भिन्नता के अंतर्विरोध का द्वंदात्मक हल करना होगा ताकि ये अंतर्विरोध एक दूसरे के पूरक हो सकें। सिर्फ एक को आधार बना कर के चलने की कोशिश आसान तो है लेकिन बहुत दूर तक संघर्ष को नहीं लेजा पाएगी। संयुक्त कार्यवाहियों के बीच ही मतभेदों को हल करने का आधार खड़ा होगा क्योंकि व्यवहार के आधार पर ही मतभेदों को हल करने की जमीन भी तैयार होगी और क्या गलत है और क्या सही है उसकी एक हद तक समझ भी बनेगी। पर दुखद है कि जब हुक्मरानों का हमला होता है तो हम इकठ्ठा हो जाते हैं। लेकिन एक हो कर कोई साझा पहल नहीं कर पा रहे हैं। यही नक्सलबाड़ी की विरासत को आगे बढा सकता है और यही आज की चुनौती है।

गतांक की चीर-फ़ाड़

डा. जुगल किशोर गुप्ता

मन्त्री कृष्णपाल की जुमलेबाजी का पोस्टर बना 'जनसत्ता'

मज़दूर मार्चा के 1-15 दिसम्बर 2017 के अंक में राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, शैक्षनिक, साहित्यिक, स्वास्थ्य, फिल्मों आदि से सम्बन्धित मुद्दों पर अनेक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' व 'जनसत्ता' निर्भिक व विरोध की आवाज के लिये कभी बुद्धिजीवी वर्ग में प्रतिष्ठित समाचार पत्र रहे हैं। परन्तु 'जनसत्ता' के सम्पादक मुकेश भारद्वाज ने स्थानीय सांसद व केन्द्रीय मंत्री कृष्णपाल गूजर का प्रायोजित साक्षात्कार अपने समाचार पत्र में छापकर इसकी प्रतिष्ठा को चोट पहुंचाई है।

इस साक्षात्कार में मन्त्री कृष्णपाल ने मोदी व भाजपा के शीर्ष नेताओं का गुणगान व उनकी प्रशंसा करके अपनी छवि बनाने तो वहीं सम्पादक भारद्वाज ने इसके जरिए मोदी के नजदीक पहुंचने का प्रयास किया है। फ़रीदाबाद नगर तथा इसकी जनता की दुर्दशा की ओर इनमें से किसी ने भी ध्यान नहीं दिया है। मन्त्रीजी के नजदीकी लोगों पर पुलिस विभाग में उनकी दखलंदाज़ी, रेत माफ़िया को संरक्षण देने तथा जमीन कब्जाने की कोशिश करने के आरोप लगते रहे हैं, जिसका ''मोदीजी की गोद में जाने को आतुर 'जनसत्ता' सम्पादक मुकेश भारद्वाज की पेड- न्यूज- फ़रीदाबाद में झूठे वादों का डंका बजाते मंत्री कृष्णपाल का प्रायोजित साक्षात्कार'' व 'गुजर का मोदीगान' लेखों में पूरा पर्दाफ़ाश किया गया है। यह प्रायोजित साक्षात्कार एक प्रकार की पेड-न्यूज ही है जो पत्रकारिता के नाम पर एक अनैतिक व शर्मनाक कार्य है। गौरतलब है कि मेवला महाराजपुर गांव के बिशम्बर सिंह द्वारा जमीन पर कब्जा करने के प्रयास सम्बन्धी दायर याचिका पर पंजाब व हरियाणा हाईकोर्ट ने सुनवाई करते हुए स्थानीय डीसीपी से इस मामले में अदालत द्वारा जारी आदेश की पालना पर रिपोर्ट तलब की है।

रेयान इंटरनेशनल स्कूल गुड़गांव के सात वर्षीय छात्र प्रद्युमन हत्या कांड में स्कूल के ही निम्न वर्गीय व गरीब बस कंडक्टर अशोक को मौके पर ही गिरफ़्तार करके पुलिस ने अमानवीय ढंग से टार्चर करके हत्या कबूलने पर मजबूर किया तथा हाई कोर्ट व सुप्रीम कोर्ट ने भी इस जघन्य मामले में संवेदनहीनता ही दिखाई जिसका लेख 'प्रद्युमन हत्या काण्ड में अशोक कभी न्याय नहीं पायेगा-पुलिस ने टार्चर किया, अदालत ने असंवेदनशीलता की हद पार की है' में खुलासा किया गया है। स्पष्ट है कि पुलिस द्वारा किसी गरीब व कमजोर वर्ग के निर्दोष व्यक्ति को किसी भी केस में फंसाया जा सकता है और यदि वह उच्च वर्ग से है अथवा कोई सिलेबरिटि है तो उस पर कोई आंच नहीं आती तथा अदालतों का भी लगभग यही रवैया है।

केन्द्रीय सरकार व राज्यों की सरकारों ने स्वास्थ्य व शिक्षा के क्षेत्र से अपने हाथ खींच लिये हैं तथा बजट में इस मद पर हर वर्ष कटौती की जाती है। इसके परिणामस्वरूप निजी संस्थाएं कुकुरमुत्तों की तरह फल-फुल रही है जिनका प्रमुख उद्देश्य मुनाफ़ा कमाना है जो आम लोगों की पहुंच से बाहर है। कई प्राइवेट अस्पतालों में इलाज के नाम पर मरीजों से पैसा वसूला जाता है जिसका ताजा उदाहरण है। गुरूग्राम का फोर्टिस अस्पताल जहां डेंगू के एक मरीज के परिजनों को 15 लाख रुपये से ऊपर का बिल थमा दिया।

हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर हर जिले में मेडिकल कॉलेज का दावा तो करते हैं परन्तु सरकारी अस्पतालों में पर्याप्त भवन, उपकरण, दवाई, डॉक्टर व अन्य स्टाफ़ की कमी रहती है जिसका उदाहरण है स्थानीय बादशाह खान अस्पताल की दुर्दशा। इस अस्पताल में स्थापित रेप जांच सेंटर भी सुविधाओं के अभाव में नाममात्र का सेंटर रह गया है। जो डॉक्टर व स्टाफ़ बीके अस्पताल में नियुक्त हैं उनमें से कुछ तो अपने निजी स्वार्थ और कामचोरी के लिये कायदे-कानूनों को ताक पर रखने से भी नहीं चूकते, जिनका 'दावे मेडिकल कॉलेज खोलने के, इंतजाम रेबिज का भी नहीं', 'रेप अपराधी को बचाने का प्रयास किया डॉक्टर संगीता अग्रवाल ने' तथा 'साढे तीन साल बाद भी रेप जांच सेंटर में नहीं जुटाई सुविधाएं' लेखों में पूरा विवेचन किया गया है।

लगभग यही स्थिति ई एसआई कार्पोरेशन द्वारा संचालित ई एसआई डिस्पेंसरियों की है जिसका लेख 'ईएसआई डिस्पेंसरी के मरीजों को जांच के लिये भटकना पड़ता है' में खुलासा किया गया है। विशेष ध्यान देने की बात है कि मज़दूरों की तनखाह से हर महिने ईएसआई कटती है जो उनकी स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च होना है, परन्तु ईएसआई कार्पोरेशन तथा राज्य सरकार इस ओर कोई ध्यान नहीं देती।

स्वास्थ्य की तरह शिक्षा भी सरकार की उपेक्षा की शिकार है। उच्च शिक्षा केन्द्र कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में भी पर्याप्त भवन, शिक्षक, उपकरण व अन्य स्टाफ़ की कमी है। दयाल सिंह कॉलेज (सांध्य) तथा दयाल सिंह कॉलेज पहले एक ही भवन में अलग-अलग पारी में कार्यरत थे परन्तु अब सांध्य कॉलेज को दोपहर बाद चलने वाले कॉलेज में तब्दील कर दिया है और नियमों की अवहेलना करते हुए इसका नाम बदलकर बन्दे मातरम् कॉलेज करके साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने का प्रयास किया है जिसका लेख 'दिल्ली विश्वविद्यालय का दयाल सिंह कॉलेज बना बन्दे मातरम् का अखाड़ा' में विस्तृत वर्णन किया गया है। मुख्य सवाल है कि अब दो कॉलेज एक साथ एक ही भवन में कैसे चलेंगेऔर इसे साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का अखाड़ा क्यों बनाया जा रहा है।

गुजरात विधानसभा चुनाव प्रचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। कांग्रेस व भाजपा दोनों के दिग्गज नेता मतदाताओं को रिझाने में एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं। प्रधानमंत्री मोदी को गुजरात में पहली बार कांग्रेस व राहुल गांधी के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। इसलिये मोदी ने केन्द्रीय मन्त्रियों, भाजपा शासित राज्यों के अनेक मुख्यमंत्री, भाजपा के वरिष्ठ नेता आरएसएस के शीर्ष कार्यकर्ताओं को गुजरात में चुनाव प्रचार में लगा रखा है।

मोदी व भाजपा के शीर्ष नेताओं ने शालीनता की जगह अपने विरोधियों विशेषकर कांग्रेस व राहुल गांधी की आलोचना करने में अभद्र भाषा का प्रयोग करते हुए चुनावी भाषणों को निम्नतम स्तर पर पहुंचा दिया है जिसका लेख 'गुजरात चुनाव: पैरों तले जमीन खिसकती नजर आ रही मोदी को' में सटीक विश्लेषण किया गया है। मोदीजी तथा भाजपा नेताओं द्वारा राम मन्दिर का मुद्दा उछालकर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण करने का भी प्रयास किया जा रहा है। कांग्रेस के कुछ नेताओं द्वारा भी अमर्यादित भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। राजनीतिक बहस व चुनावी भाषणों में शालीनता व मर्यादा बनाए रखने की आवश्यकता है।

पद्मावती फ़िल्म को लेकर देश भर में बवाल मचा हुआ है। भाजपा शासित राज्यों में कई मुख्यमंत्रियों ने फ़िल्म के रिलीज करने पर पाबंदी लगा दी है। इस फ़िल्म पर मचे फ़साद का लेख 'पद्मावती ने हमारे अन्दर भी तलवारें खींच दी है' में वर्णन किया गया है। विडम्बना है कि फ़िल्म का विरोध करने वालों ने अभी इसे देखा भी नहीं है। लगता है कि यह चुनावी मुद्दा बन गया हैऔर भाजपा की ओर से लोगों का ध्यान बांटने के लिये माहौल खराब किया जा रहा है। गुजरात चुनाव के बाद शायद इस फ़िल्म को रिलीज कर दिया जायेगा।

अन्य प्रकाशित सभी लेख उच्च स्तरीय व प्रशंसनीय हैं।